श्री कृष्ण प्रणामी धर्म पत्रिका

શ્રી કૃષ્ણ પ્રણામી ધર્મ પત્રિકા

आये षटदर्शनी षट शास्त्रवेदी, बहत्तर फिरके आये अथर्ववेदी ।
आये सकल कैदी और बेकैदी, भई नई रे, नवों खण्डों आरती ॥

वि. सं. १७३५ में हरिद्वार कुम्भ मेलेपर विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक अवतार महामति श्री प्राणनाथजीकी आरती उतारते हुए विभिन्न धर्माचार्य एवं सन्त विद्वान ।

मई २०१०

वर्ष ८२ | श्री ५ नवतनपुरी धाम, जामनगर | अंक ५

www.krishnapranami.org
www.shritartamsagar.org

(१-१०) श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर जयपुरके वार्षिक महोत्सवके विविध दृश्य
(११-१४) माधव इन्टरनेशनल स्कूल, अहमदाबाद उद्घाटन अवसरके दृश्य
(१५) अंजार (कच्छ) में श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर स्थापनाके १०० वर्ष पूर्ण होनेपर आयोजित शताब्दी उत्सव पर आशीर्वचन प्रदान करते हुए परम पूज्य आचार्य महाराजश्री

श्रीकृष्ण प्रणामी धर्म पत्रिका

संस्थापक : ब्रह्मलीन आचार्य श्री १०८ धनीदासजी महाराज

वि.सं : २०६७ | निजानन्दाब्द : ४२८ | बुद्धजी शाका : ३३३

वर्ष : ८२ | मई २०१० | अंक : ५

मुद्रक, प्रकाशक एवं स्वामित्व } जगद्गुरु आचार्य श्री १०८ कृष्णमणिजी महाराज

मुद्रण एवं प्रकाशन स्थल } श्री ५ नवतनपुरी धाम खीजड़ा मन्दिर जामनगर - ३६१ ००१ (गुजरात) भारत

सम्पादक : शास्त्री श्री लक्ष्मण चैतन्य *एवं* श्री कनकराय व्यास

वार्षिक शुल्क रु. १००/- | १५ वर्षीय शुल्क रु. १०००/-

पता : श्री कृष्ण प्रणामी धर्म पत्रिका, श्री ५ नवतनपुरी धाम, जामनगर ३६१ ००१

फोन : (०२८८) २६७ २८२९ फेक्स (०२८८) २५५ १३५३

E-mail : navtan@sancharnet.in, navtanpuri@gmail.com

website : www.krishnapranami.org/www.krishnadham.org

छत्रसाल जयन्ती

जेठ शुक्ल तृतीया महाराजा छत्रसालजीकी जन्म जयन्ती है । इस वर्ष यह पावन दिन दिनांक १५ जून २०१० को है । प्रणामी समाजमें छत्रसाल जयन्ती हर्ष और उल्लासके साथ मनायी जाती है । छत्रसाल राजा होते हुए भी महामति श्री प्राणनाथजीके प्रति समर्पित थे । उनके मनमें अहंकारका स्थान लेशमात्र भी नहीं था । वे सदैव महामति श्री प्राणनाथजीकी सेवामें समर्पित थे । छत्रसाल जयन्ती वास्तमें समर्पणका दिन है । हमारे हृदयमें ऐसी भावना प्रकट होगी तो हमारा जीवन धन्य होगा ।

जागो जगाऊँ जुगत सों

परम पूज्य जगद्गुरु आचार्य श्री १०८ कृष्णमणिजी महाराज

श्री कृष्ण प्रणामी वाङ्मयमें जागनी शब्दका प्रयोग अनेकश: हुआ है। जागनी शब्द विशेष अर्थ रखता है, वह है आत्माकी जागृति। महामति श्री प्राणनाथजीने वारम्वार इस शब्दका प्रयोग किया है। वे ब्रह्मात्माओंको सम्बोधित करते हुए कहते हैं,

जागो जगाऊं जुगत सों, छोड़ो नींद विकार ।
पेहेचान कराऊं पीउ सों, सुफल करूँ अवतार ॥

(कलश हि. २२/१९)

हे आत्माओ ! तुम जागृत हो जाओ। मैं तुम्हें युक्तिपूर्वक जागृत कर रहाँ हूँ। तुम अब अज्ञानरूपी नींदके विकारोंको छोड़ दो। मैं तुम्हें पूर्णब्रह्म परमात्माकी पहचान करवाता हूँ और मनुष्य जीवनरूपी अवतारको सफल बना देता हूँ।

महामतिने जागनीके बहुत बड़े दायित्वको शिरोधार्य कर ब्रह्मात्माओंको ये वचन दिए हैं। ये एक-एक वचन बड़े मार्मिक हैं। इनपर विचार करेंगे तो हमारा जीवन धन्य हो जाएगा।

उक्त चौपाईके द्वारा महामतिने पाँच मार्मिक बातें कही हैं। वे हैं, (१) तुम जागो, (२) मैं तुम्हें युक्तिपूर्वक जगा रहा हूँ, (३) अज्ञानरूपी नींदके विकारको छोड़ो, (४) मैं तुम्हें परमात्माकी पहचान करवा देता हूँ जिससे, (५) तुम्हारा मनुष्य अवतार सफल हो जाएगा। इन पाँचों मुद्दाओंका पृथक्-पृथक् विवेचन इस प्रकार है,

(१) जागो अर्थात् हे आत्मा ! तुम जागृत हो जाओ। महामतिने यहाँपर ठोक बजा कर कहा, तुम जागो !! क्योंकि तुम आत्मा हो। आत्माको जागृत होना ही पड़ेगा। यहाँपर आत्माओंको अपने कर्तव्यका बोध करवाया है। यदि हम आत्मा हैं तो हमें जागना होगा। हमें परम सुख(आनन्द) चाहिए वह तो जागृत होनेपर ही प्राप्त होगा। जागृत चेतना ही आनन्दका अनुभव कर सकती है। प्रसुप्त चेतना कभी भी आनन्दका अनुभव नहीं कर सकती।

चौरासी लाख प्रकारकी योनियोंमें रहते हुए आत्माको आत्मभावका अनुभव सम्भव नहीं था। अब मनुष्यका जीवन मिला है तो यह सब सम्भव हो गया किन्तु इसके

लिए पहले देहबुद्धिको छोड़कर आत्मभावमें स्थित होना पड़ेगा। यह अवसर आत्म-जागृतिके लिए है। दूसरे शब्दोंमें कहें तो ब्रह्मात्माको चौरासी लाख योनियोंमें न भेजकर सीधा मनुष्य तन प्रदान किया गया है। इसका मुख्य उद्देश्य यही है कि वे इस शरीरमें रहते हुए भौतिक दुःख-सुखका भी अनुभव कर सकती हैं और स्वयं आत्मभावमें स्थित होकर अर्थात् जागृत होकर परमधामके अखण्ड आनन्दका भी अनुभव कर सकती हैं। इसके लिए देहबुद्धिको छोड़ कर आत्मभावमें स्थित होना आवश्यक है। इसीलिए ही महामतिने सीधा आदेश दिया कि तुम जागो। अभीतक तुम्हें देहका ख्याल रहा है यही तुम्हारी प्रसुप्ति थी। अब तुम देहभावको मिटाकर आत्मभावमें रहों, स्वयंको आत्मा समझो। इससे तुम्हारी जागनी होगी।

(२) युक्तिपूर्वक जगाना। जागनीके लिए सावचेत कर महामतिने दूसरी बात कही, तुम्हें अन्य चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है। तुम स्वयंको आत्म समझो। बस, शेष कार्य मैं करूँगा। मैं तुम्हें युक्तिपूर्वक जागृत करूँगा। तुम देहभावमें रहोगे तो मैं तुम्हें कैसे जगा पाऊँगा ? क्योंकि देह तो जागृत नहीं हो सकता। तुम जैसे ही आत्मभावमें रहोगे तभी मैं तुम्हें युक्तिपूर्वक जागृत कर पाऊँगा। यहाँपर युक्तिपूर्वक कहनेका तात्पर्य है, अलग-अलग युक्तियोंका प्रयोग करना क्योंकि भिन्न-भिन्न आत्माओंकी स्थिति एक दूसरेसे भिन्न हो सकती है। उनकी देश, काल और परिस्थिति भिन्न-भिन्न होनेसे उन्हें भिन्न-भिन्न युक्तिके द्वारा जागृत करना होगा। प्रत्येक आत्माकी स्थिति भिन्न होगी ऐसी बात नहीं है किन्तु सभी आत्माओंकी एक स्थिति भी नहीं होगी। कुछ आत्माओंकी कोई स्थिति होगी तो कुछ आत्माओंकी अन्य। इस प्रकार आत्माओंकी स्थितिके अनेक प्रकार होंगे। उन आत्माओंको उसी प्रकारसे जागृत करना होगा जिनका जो प्रकार हो। महामतिने आत्माओंकी स्थितिको देखते हुए युक्तियोंका प्रयोग किया है।

यहाँ पर हम कुछ आत्माओंकी जागनीका प्रसंग उपस्थित करने जा रहे हैं जिससे भिन्न-भिन्न युक्तियोंका ज्ञान होगा।

महामति नयाँ गाँव बसानेके लिए जूनागढ़की राजकीय यात्रा पर थे। वहाँ पर कानजी भाई नामके एक सुन्दरसाथ जूनागढ़के प्रसिद्ध पण्डित हरजी व्यासके वहाँ भोजन बनानेका कार्य करते थे। पण्डितजीकी वृद्धावस्था थी। एक दिन वे विमारीके

कारण मूर्छित हो गए थे । ऐसेमें घरके लोगोंने सोचा, पण्डितजीकी यह अन्तिम अवस्था है इसलिए उन्हें पलंगसे नीचे जमीन पर उतार लिया और उनके हाथसे गोदान आदिका संकल्प करवाने लगे। इतनेमें पण्डितजीको होस आया। परिवारवालोंका यह कृत्य देख कर कहने लगे, मैं इस ब्रह्माण्डका जीव नहीं हूँ। इसलिए मेरे लिए ये सब दान पुण्य निरर्थक हैं। मुझे इन पुण्योंको भोगनेके लिए स्वर्ग आदि लोकोंमें नहीं जाना है। किन्तु मैं मनमें दो अधुरी इच्छा लेकर इस लोकसे जा रहा हूँ। आजतक मैंने जिस बातको 'हाँ' कहा उसे 'ना' कहनेवाला कोई व्यक्ति मुझे नहीं मिला और मैंने जिस बातको 'ना' कहा उसे 'हाँ' कहनेवाला कोई नहीं मिला। कान्हजी भाई यह बात सुन रहे थे । उस समय उन्होंने मनोमन श्री राजजीसे प्रार्थना की, यदि ये पण्डितजी इसबार जीवित रह जायें तो मैं उन्हें महामति श्री प्राणनाथजीसे भेंट करवा दूँगा जिससे इनकी दोनों अधुरी इच्छायें पूरी हो जाएँगी । श्री राजजीकी अपार कृपा हुई । पण्डितजीके स्वास्थ्यमें सुधार होने लगा। कान्हजी भाईने उनकी बहुत सेवा की। उनको पूछ-पूछ कर इच्छानुकूल एवं स्वास्थ्यवर्धक भोजन करवाया। थोड़े दिनोंमें पण्डित हरजी व्यास अच्छे स्वास्थ्य हो गए। उन्होंने कान्हजी भाईको कहा, 'तुमने मेरी भलीभांति सेवा की है, मैं तुमसे अतीव प्रसन्न हूँ। अब तुम मुझसे कुछ माँगो।' 'यह तो मेरा कर्तव्य है। मैंने अपने कर्तव्यका ही पालन किया है' कहकर कान्हजी भाईने बात टाल दी। थोड़े दिनों पश्चात् पण्डितजीने पुनः यह बात दोहरायी । कान्हजी भाई तो पण्डितजीका कल्याण करना चाहते थे इसलिए भौतिक वस्तु माँगनेकी अपेक्षा कहने लगे, यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं तो मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप मेरे परिचित एक सन्तसे सत्संग चर्चा करें । यह सुनकर हरजी व्यास कहने लगे, अरे कान्हजी ! तुमने क्या माँगा ? मैं तो सोचता था कि तुम मुझसे कुछ सम्पत्ति मागोगे। एक तो तुमने मेरी सेवा कर मुझे प्रसन्न किया दूसरा सन्तके साथ सत्संग करनेकी बात करके और प्रसन्नता दिला रहे हो । चलो, उन सन्तको तत्काल बुला लाओ ।

कान्हजी भाईने महामतिको सारी घटना कह सुनायी और हरजी व्याससे सत्संग करनेकी प्रार्थना की। महामति हरजी व्यासके पास गए। वहाँ पर एक महीने पर्यन्त हरजी व्याससे सत्संग सुनते रहे। जब वे अक्षर ब्रह्मकी बात बतानेमें असमर्थ हुए तब महामतिने उन्हें क्षर, अक्षर और अक्षरातीतकी बात समझायी और अपने

आगमनका कारण जताया। यह भी जागनीकी एक युक्ति है। हरजीव्यास जैसे पण्डित सामान्यतया ज्ञान सुननेवालोंमें नहीं थे। महामतिने उनको सुनाया नहीं अपितु वे एक महीने पर्यन्त चर्चा सुनते रहे। जब हरजी व्यास अटक गए तब वहाँसे आगेकी बात उन्हें समझाने लगे जिससे उनकी अधुरी इच्छा भी पूरी कर दी और उन्हें तारतम ज्ञान प्रदान कर जागृत किया।

दूसरे प्रकारकी युक्तिमें सन्त चिन्तामणिके प्रसंगको लिया जा सकता है। महामति श्री प्राणनाथजी ठट्ठानगरमें नाथा जोशीके वहाँ रहकर सत्संग कर रहे थे। एक दिन शहरके प्रतिष्ठत सन्त चिन्तामणिसे मिलनेके लिए गए। चिन्तामणि बड़े प्रसन्न होकर कहने लगे।

कहाँसे आए साधु तुम, चरचा करो हमसों।
के तुम हमको सुनाओ, जो कछु ज्यादा आवे तुमको ॥ १३

जो देने आए हो तो देओ, लेने आए हो तो देवें हम।
तुम सुनो हम कहें, ज्यों होय चरचा आतम ॥१४

(लालदासजी वीतक प्र. २३)

आप कहाँसे पधारे हैं, हमारे साथ सत्संग करें। या तो आप हमें सुनायें या हम आपको सुनायें। आप देनेके लिए आए हैं तो चर्चा सुनायें अन्यथा मैं आपको सुनाता हूँ। तब महामतिजीने कहा,

तब श्रीजीए कह्या, हम लेने आए वस्त।
हम को तुम बताय देओ, ए है हमारा कस्त ॥ १७

(लालदासजी वीतक प्र. २३)

सन्त चिन्तामणि कबीर पन्थके थे। उन्होंने कबीरकी अपेक्षा कमालको श्रेष्ठ कहते हुए कुछ चमत्कारोंकी बात कही। तब महामतिने कहा, कबीर और कमालमें बड़ा अन्तर है। कबीरने पूर्णब्रह्म परमात्माकी और प्रेमाभक्तिकी बात कही है जबकि कमालने भौतिक चमत्कारोंका उपदेश दिया है। तब महामतिने कबीरके एक पदकी चर्चा की और वहाँसे चल पड़े। इधर चिन्तामणि अपने शिष्योंको कहने लगे ये महात्मा बड़े ज्ञानी हैं। मैं जिन महापुरुषके मिलनेकी बात कर रहा था वे ये ही होने चाहिए। चिन्तामणिको रातको नींद नहीं आयी और वे बाहर निकल कर नगरमें महामति कहाँ

ठहरे हैं उस स्थानको ढूँढ़ने लगे । प्रातः होनेपर नाथा जोशीके वहाँ पहुँचे और महामतिको दण्डवत प्रणाम किया । इस प्रकार शिष्यों सहित नित्य चर्चामें आने लगे । महामतिने चर्चाके अवसर पर भौतिक चमत्कारोंको अध्यात्ममार्गके बाधक कहते हुए क्षर, अक्षर और अक्षरातीतकी बात कही । तब चिन्तामणिने एकान्तमें मिलकर महामतिसे कहा, आप बात तो ठीक कहते हैं । मैं आज तक जिस भौतिक ज्ञानमें रचा पचा रहा हूँ उसका कोई महत्त्व नहीं है किन्तु आप मेरे शिष्योंके बीच मेरी शर्म रखकर मुझे उपदेश दें । तब महामतिने कहा, मैं आपका पूरा ध्यान रखूँगा और आपको शर्मिन्दा न होना पड़े ऐसा प्रबन्ध करूँगा । वे सब अपने स्थान पर चले गए । इधर महामतिने रातको एक कीर्तन बनाया और दूसरे दिन चर्चासे पहले चिन्तामणिको पढ़ने दिया । यह कीर्तन; किरन्तन ग्रन्थका पाँचवा प्रकरण है, इसमें कुल ग्यारह चौपाइयाँ हैं । इसमें अध्यात्म मार्गमें चलनेवालोंको भौतिक मान एवं ज्ञान आदिके अहंकारसे दूर होनेकी शिक्षा दी है । यह कीर्तन पड़ते ही चिन्तामणिका अहंकार दूर हो गया, आत्मामें जागृति आई और वे सभाके बीचमें खड़े होकर कहने लगे,

अब मारो काले कुत्ते को, लाठी सिर ऊपर ।
सेवकों आगें तब कह्या, मैं खाली कछू न खबर ।।

(लालदासजी वीतक २४/१३)

मेरे सिरपर अहंकाररूपी काला कुत्ता सवार है आप लाठी मार कर इसे भगा दें । उन्होंने अपने शिष्योंको भी कहा, मैं अभी तक अध्यात्मक्षेत्रमें खाली रहा । मुझे आत्मा और परमात्माके सन्दर्भमें कुछ भी ज्ञान नहीं है । तब महामतिने कहा,

तब श्रीजीयें सराहिया, स्यावास चिन्तामणि ।
पाई तें निस्बत को, ए सुकन मोमिन ।।

(लालदासजी वीतक २४/१४)

हे चिन्तामणि ! आपको धन्यवाद है । ब्रह्मात्मा ही इस प्रकार आत्म निरीक्षण कर अन्तःकरणके विकारोंको दूर करती है ।

तब महामतिने चार प्रकारके पहरेज बताकर चिन्तामणिको शिष्यमण्डली सहित तारतम मन्त्र प्रदान किया । वे चार पहरेज इस प्रकार हैं,

एक हराम कह्या मांस को, दूसरा हराम सराब ।
तीसरा औरत बिरानी तजै, सो पावे हैयाती आब ॥

चोरी झूठ बोलना, इनका छोडाया उदक ।
अब हम कबहूँ ना करें, हम पाया बेसक हक ॥

(लालदासजी वीतक २४/१६,१७)

इस प्रकार मांस, शराब, व्यभिचार, चोरी और झूठको छोड़नेका संकल्प करवा कर उन्हें तारतम मन्त्र प्रदान कर सुन्दररसाथमें सम्मिलित किया ।

सुन्दरसाथजी ! पंडित हरजी व्यास ज्ञानी थे और चिन्तामणि प्रतिष्ठित थे । दोनोंके सात्त्विक एवं राजस अहंकारको दूर कर महामतिने उन्हें ब्रह्मज्ञान प्रदान किया। यह जागनीकी विशेष युक्ति है। इसी प्रकार एक अन्य युक्तिकी चर्चा करते हैं,

महामति श्री प्राणनाथजी अपनी जागनी यात्रामें मस्कत बन्दरसे अब्बासी बन्दर पहुँचे थे । वहाँ पर भैरव सेठने अपनी सम्पत्तिका सदुपयोग कर बाईजीराज सहित अनेक अपहृत बन्धुओंको छुड़ा कर मस्कतसे अब्बासी बन्दर बुला लिया था । इसी समय महामति श्री प्राणनाथजीसे उनकी भेंट हुई । उन्होंने महामतिको अपने घर बुलाया और बड़े आदरके साथ रखा। सत्संग चर्चा होने लगी। भैरव सेठको भी बड़ी प्रसन्नता हुई। एक दिन महामतिने भैरव सेठसे कहा,

सेठजी ! आपने हमें अपने घर बुलाया और सत्संग चर्चाकी व्यवस्था की । दूसरी ओर आपने अपहृत सुन्दरसाथको छुड़ाकर बहुत बड़ा कार्य किया है । इसके बदलेमें मैं आपको क्या दूँ ? आपने अपने पासकी भौतिक सम्पत्तिका उपयोग कर बहुत बड़ा उपकार किया है। मेरे पास आध्यात्मिक सम्पत्ति है। आप उसे ग्रहण कर अपने जीवनको धन्य बना सकते हैं। तब भैरव सेठने कहा, क्या मैं भगवानको प्राप्त कर सकता हूँ। महामतिने कहा, क्यों नहीं ? आपकी आत्मा निर्मल है। आपका हृदय भी निर्मल है किन्तु निषिद्ध खान-पान एवं आचरणके कारण आपकी अन्तर्दृष्टि खुली नहीं है । यदि आप कुछ पहरेज करेंगे तो आपकी दृष्टि खुल जाएगी और आपको परमात्माके चरणकमल प्राप्त हो जायेंगे। आप मात्र एक महीनेका नियम लीजिए। यदि एक महीनेके अन्दर आपको कोई भी अनुभव नहीं होगा तो आप अपना पहरेज तोड़कर पुनः मायामें मग्न रह सकेंगे। यह सुनकर भैरव सेठकी खुशीकी कोई सीमा

नहीं रही। उन्होंने कहा, यदि एक महीनेके नियमसे मुझे परमात्माकी अनुभूति होगी तो इससे बढ़कर और क्या हो सकता है। पूरे जीवनमें न पाई हुई सम्पत्ति मैं एक महीनेमें प्राप्त करूँगा तो मेरा जीवन धन्य हो जाएगा। आप कहें वे कौनसे नियम हैं ? महामतिने उन्हें पाँच नियम इस प्रकार समझाये,

पीवना तमाखू छोड़ दो, और मांस मछली सब ।
शराब और सब कैफ, पर दारा चोरी न कब ॥

(लालदास वीतक २७/२९)

(क) तम्बाखू जिसमें गूटखे, सिगारेट, बीड़ी, फाँकी आदि सभीको छोड़ना।

(ख) मांस, मछली, अण्डा आदि मांसाहार नहीं करना।

(ग) शराब और कैफी द्रव्य अर्थात् सम्पूर्ण मादक पदार्थ जिसमें भांग आदि सहित सब प्रकारके ड्रग्स आ जाते हैं, नहीं लेना।

(घ) परस्त्री गमन अर्थात् व्यभिचार नहीं करना। और

(ङ) चोरी अर्थात् दूसरोंके अधिकारकी वस्तुको बलपूर्वक अथवा दृष्टि बचाकर अपने अधिकारमें लेना एवं अपने कर्तव्यका पालन न करना। इन पाँचों निषद्ध कार्योंको छोड़ना। ये नियम प्रत्येक सुन्दरसाथजीके लिए पालनीय हैं।

भैरव सेठने इन नियमोंके पालनका संकल्प किया और अपने पासमें पड़े हुए हुक्काको भी तोड़कर फैंक डाला। उन्होंने इतनी निष्ठासे चर्चा सुनी कि तीसरे दिन ही उनको श्री राजजीकी अनुभूति हुई।

भैरव शेठका हृदय निर्मल था तथापि निषिद्ध खान, पान एवं आचरणके कारण उनको अनुभव नहीं हो रहा था जैसे ही उन्होंने अपने आचरणको सुधारा उसी समय उनकी अन्तर्दृष्टि खुल गई और उन्हें अनुभव हुआ। इस घटनासे हमें यह समझना होगा कि हमारा खान, पान एवं आचरण भी ठीक होना चाहिए। तभी हमारी जागनी होगी।

महामति श्री प्राणनाथजीने इस प्रकार अनेक युक्तियोंसे सुन्दरसाथको जागृत किया। यहाँपर मात्र दो तीन प्रसंगोंका ही उल्लेख सम्भव हो सका। इसी प्रकार अन्य युक्तियोंको भी समझें।

(३) छोड़ो नींद विकार : अज्ञान रूपी नींदके कारण अंत:करणमें विकार भरने लगते हैं । इन विकारोंको दूर करनेके लिए ज्ञानरूपी प्रकाशकी आवश्यकता पड़ती है । अनेक वर्षोंसे अन्धकारमय बनी हुई कोठरी भी एक दीपकके प्रकाशसे तत्काल प्रकाशयुक्त हो जाती है जिससे उसमें भरी हुई धूल आदिको उसी समय दूर किया जा सकता है । इसी प्रकार जन्मजन्मान्तरके या इसी जन्ममें भी बाल्यकालसे लेकर आज पर्यन्तके विकारोंको तारतम ज्ञानरूपी सूर्यके प्रकाशसे प्रकाशित कर अन्त:करणको तत्काल निर्विकार बनाया जा सकता है । इसीलिए महामतिने कहा, अज्ञानके विकारको दूर करो । अन्त:करणमें पड़े हुए कुसंस्कारोंको दूर करने पर ही आत्मामें जागृति आ सकती है। आत्म जागृतिके लिए विकारोंको छोड़ना अति आवश्यक है । यथार्थत: आत्मा निर्विकार है और परमात्मा भी निर्विकार हैं(निर्विकारं सनातनम्) । किन्तु शरीर धारण करनेके कारण अन्त:करणमें भरे हुए विकारोंसे आत्माको अपने स्वरूपकी पहचान नहीं होती है जिससे उसे परमात्माकी भी पहचान नहीं होती है । इसलिए महामतिने विकारोंको दूर करनेकी बात कही है। विकारोंके दूर होने पर स्वका अनुभव होगा तब आगेकी सीढ़ीमें चढ़ पायेंगे वह है,

(४)परमात्माकी पहचान । विकारोंको छोड़नेके लिए स्वयं प्रयत्न करना होगा यदि हम मनसे संकल्प करते हैं कि मुझे विकारोंको छोड़ना है तब श्री राजजीसे भी प्रार्थना करेंगे। तभी श्री राजजी हमारी प्रार्थना सुनेंगे। अन्यथा श्री राजजी हमारी प्रार्थना नहीं सुनेंगे। कुछ प्रयत्न तो हमें करने ही पड़ेगे। जैसे ही हम विकारोंको दूर करने लगते हैं तभी महामति हमारा हाथ थाम कर कहने लगेंगे, अब मैं तुम्हें श्री राजजीकी पहचान करवाता हूँ। श्री राजजीकी पहचान करनेके लिए ही यह जीवन है । मनुष्य जीवनके कर्यव्योंका बोध करवाते हुए महामति कहते हैं,

मानखे देह अखण्ड फल पाइए ।

यह अखण्ड फल सद्गुरुके वचनोंपर विश्वास कर चलने पर ही प्राप्त होता है । यथा,

विश्वास करीने दोड़से जेह, तारतमनो फल लेशे तेह ।

तारतम ज्ञानसे प्राप्त होनेवाला अखण्ड फल क्या है ? इस विषयमें कहा है,

घर श्री धाम अने श्री कृष्ण, ये फल सार तणो तारतम ।।

अर्थात् अपना घर परमधाम एवं अपने धनी पूर्णब्रह्म परमात्मा श्री कृष्णकी पहचान या प्राप्ति ही अखण्ड फलकी प्राप्ति है। इसी अखण्ड फलकी प्राप्ति करवानेके लिए महामति कहते हैं, पहचान कराऊं पीउसों।

परमात्माकी पहचान होनेपर ही यह जीवन सफल माना जायेगा। इसीलिए कहा,

(५) सुफल करूँ अवतार ।

मनुष्य जीवन अवतार है। अवतारका तात्पर्य है, किसी विशेष कार्यके लिए उच्च स्थानसे आई हुई शक्ति। वह विशेष कार्य करके ही लौटेगी। जिस शक्तिने विशेष कार्य किए हैं उसको ही अवतार कहा है। रावणके पास भी शक्ति थी। बुद्धिबल, बाहुबल अथवा शास्त्रबल एवं शस्त्रबलमें वह कम नहीं था किन्तु उसने अच्छे कार्य नहीं किए इसीलिए वह अवतार नहीं अपितु असुर कहलाया। इसी प्रकार कंस भी अपराजेय था किन्तु उसने भी अपनी शक्तिका दुरूपयोग किया। इस प्रकार शक्तिका दुरूपयोग करनेवाले असुर अथवा दानव कहलाए। किन्तु शक्तिका सदुपयोग करनेवाले राम, कृष्ण आदि अवतार कहलाए। मनुष्य जीवनको अवतार इसीलिए कहा है कि वह अच्छे कार्य करे। परमधामसे आयी हुई ब्रह्मात्माओंको मनुष्यका शरीर मिला है। वे स्वयं जागृत होकर अन्य आत्माओंको जगानेका कार्य करेंगी तो उनका अवतार सफल माना जायेगा। संसारके जीवोंको अखण्ड मुक्ति दिलानेका दायित्व उनको ही सौंपा गया है। इतने बड़े दायित्वके निर्वह्नके लिए हमें जागृत होना ही पड़ेगा।

यदि हम महामतिके वचनोंका पालन करेंगे तो जागृत होकर अपने धनी और धामका भी अनुभव कर सकेंगे और अपने जीवनको भी सफल बना सकेंगे।

आत्मा नदी भारत पुण्यतीर्था सत्योदका धृतिकूला दयोर्मिः ।
तस्यां स्नातं पूयते पुण्यकर्मा पुण्यो ह्यात्मा नित्यमलोभ एव ॥

विदुरजी राजा धृतराष्टको समझाते हुए कहते हैं हे भारत ! यह जीवात्मा एक नदी है, इसमें पुण्य ही तीर्थ है, सत्यस्वरूप परमात्मासे इसका उद्गम हुआ है, धैर्य ही इसके किनारे हैं, इसमें दयाकी लहरें उठती है, पुण्यकर्म करनेवाला मनुष्य इसमें स्नान करके पवित्र होता है, क्योंकि लोभरहित आत्मा सदा पवित्र ही है।

विदुर नीति

सन्त महिमा

ब्रह्मलीन आचार्य श्री १०८ धर्मदासजी महाराज

परमात्मा सत् चिद् आनन्दसे पूर्ण हैं। उनके धाम, महल, मन्दिर आदि यावत् पदार्थ पूर्ण एवं चेतनमय हैं। ऐसे परम सत्ता सच्चिदानन्दमय परमात्मा श्रीराजजीके अद्वैत, अखण्ड परमधामके पथ प्रदर्शक सद्गुरु, साधु, सन्त आदि महापुरुष ही होते हैं। साधु-सन्तकी महिमा अपार और असीम है।

महाप्रभु स्वामी श्रीप्राणनाथजीने साधु संतोकी भूरी भूरी प्रशंसा की है। आप मुक्त कण्ठसे कहते हैं,

जेणे दर्शने नेत्र ठरे, अने वचन कहे ठरे अंग ।
अनेक विघन पड़े जो माथे, तोहे न मुकिए साध संग ॥

सांसारिक कई तरहकी पीडा सिर पर आ पड़े, अनेक दुःख कष्टको क्यों न उठाना पड़े, फिर भी साधुके संग अर्थात् सत्संगको नहीं छोड़ना चाहिए। सच्चरित्रवान् साधु संतोके दर्शन मात्रसे मनके विकार विलीन होते हैं और शारीरिक, भौतिक एवं आध्यात्मिक ये त्रय ताप छूट जाते हैं। कहा भी है,

संत समागमसे, दूर होत है पाप।
जो कोई सेवा करे, छूटत त्रिविध ताप ॥

संतोंकी सेवा परमात्माकी सेवाकी भाँति कही गई है। बाहरी वेश भूषाओंसे संतोंको परखा नहीं जाता। कोई कहते हैं कि जिसने गंदे कपड़े पहने हैं बोलनेका सहुर नहीं है वे कैसे संत है। 'नर कपडे से डरत हैं, नरक पड़ने से नाहिं' वास्तवमें सच्चे साधु वैसे ही होते हैं। हम संतोके इतिहासको देखें। जीवनीको पढ़ें कैसे कैसे साधु सन्त हुए हमारे देशमें। ऋषभदेव, जड भरतादिकी जीवनीको देखें, प्रथम तो उनके शरीरमें कपड़े ही नहीं थे। थे भी तो गंदे मैले कुचैले उनको कपड़ोका कोई परवाह ही नहीं था। अपनी मस्तीमें खोए रहते थे। अन्दरसे उनका जीवन दिव्य था। अलौकिक भावयात्रामें डुबे हुए ऐसे महान् संतके दर्शन मात्रसे त्रिविध ताप दूर हो जाते हैं। कहते हैं 'संत दरशको जाईए' ऐसे ही संतोंके लिए यह वाक्य है, परन्तु आजके लोगोंको

कदाच ऐसे संत मिल भी जायें तो भी वे उनको पहचान नहीं पायेंगे। बाहरी रूपको देख तिरस्कार, निन्दा व घृणा करते हैं। सन्तको कोई नहीं पहिचान पाएगा। न जाने किस रूपमें परमात्मा घरमें आते हैं कौन जान सकता ? इसलिए साधु सन्तको देखते ही झूको, नमन करो, प्रणाम कर उनकी सेवा करो अवश्य आपको फल मिलेगा।

सन्तके उपासक धर्मराज युधिष्ठिर सन्तको देखते ही दण्डवत प्रणाम करते थे। भीम थे तामस वृत्तिके। यह भीमको अच्छा नहीं लगता था। एक दिन भीमसेनने कहा, भैया आप क्यों सन्तका भेष देखते ही दण्डवत प्रणाम करते हैं। न जाने वह सच्चा सन्त है या संत भेषमें कोई और ? उसकी दिनचर्या कैसी है, कैसा आचरण है, वर्ण क्या है ? आपको कुछ पता न होते हुए भी वैसे ही भेष देख लिया और उसके चरणमें शिर झुकाते हैं। यह एक सम्राटके लिए शोभास्पद नहीं है। युधिष्ठिरने कहा, भीम ! तुम जो कुछ कह रहे हो उचित नहीं है। सन्तकी उपमाके लिए संसारमें कुछ भी नहीं है। सन्तकी उपमा सन्त ही है। चाहे वह कुछ भी जाति व वर्णमें क्यों न हो फिर भी वह सन्तके भेषमें है, वह सन्त ही है। भीम ! तुम सन्तके भेषको देख कर अपने दिलको सन्त बनानेकी कोशिश करो। दूसरेकी ओर मत देखो अपने हृदयको देखो।

भीमने सोचा मेरे बड़े भाई ऐसा कहते हैं तो मैं इनकी परीक्षा क्यों न करूं। एक दिन भीमने पीताम्बरके कपडे बनवा कर एक गधेको चन्दन माला पहनाकर युधिष्ठिरके सामने खड़ा कर दिया। पीताम्बरधारी गधेको देखते ही धर्मराजने शीघ्रतासे उठकर प्रणाम किया। भीमने कहा अरे भैया यह तो गधा है, युधिष्ठिर कहते हैं तेरी दृष्टिमें गधा होगा किन्तु मैं तो इसमें संतका ही रूप देख रहा हूँ। जिनकी दृष्टि जैसी होती है, उनको वैसा ही दिखाई देता है। कहनेका अभिप्राय यह है कि सन्तके शरीरको, कपडेको जाति तथा वर्ण एवं दिनचर्याको मत देखो उन्हें सन्तके रूपमें देखो। कहा है,

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजियो ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान॥

साधु-सन्तके गुण दिव्य होतें हैं। उनके गुणकी महिमा असीम है। साधुका जीवन ही परोपकारके लिए है।

तरुवर फलै न आपको, नदि न अचवे नीर।
परोपकारके कारने, संतन धरे शरीर॥

वृक्षोंमें फल लगते हैं परन्तु खुदके लिए नहीं, नदी बहती है स्वयंकी प्यास बुझाने व अपनी शीतलताके लिए नहीं । यह तो दूसरोंके परोपकारके लिए है वैसे ही सन्तका जीवन भी परोपकारके लिए है। सन्तका खुद कुछ नहीं है, क्योंकि सन्त तो परमात्माके प्रतिनिधि स्वरूप हैं। साधु सन्त उस अद्वैत परमधामकी अमानत हैं। परमात्माके धरोहर हैं। प्रतिनिधि स्वरूप हैं।

हमें मानव जीवन तो मिला है, किन्तु परब्रह्म परमात्माका नाम, स्मरण, चिन्तन और साधु सन्तोंकी सेवा, दान पुण्य, परोपकार नहीं करेंगे तो यह पाया हुआ जीवन निरर्थक है। लिखा है,

शीश सफल संत नमे, हाथ सफल प्रभु सेव ।
पाद सफल सतसंग गत, तब पावे कछु सेव ।।

तुलसीदासजीने सन्त महिमाको बड़े सुन्दर ढंगसे प्रस्तुत किया है,

तुलसी या जग माहें, पांच रत्न हैं सार ।
सन्त मिलन अरु हरि भजन, दया दीन उपकार ।।

सुत दारा अरु लक्ष्मी, पापी के भी होय ।
संत समागम हरि कथा, तुलसी दुर्लभ दोय ।।

तुलसीदासजीका कथन है, इस जगतमें हरेक चीज सुलभ है किन्तु परब्रह्म परमात्माकी अलौकिक दिव्य कथा और साधु सन्तोंका समागम अर्थात् सतसंग अति दुर्लभ है ।

पुराणोंमें एक कथा आती है, एक धर्मनिष्ठ राजा था। किसी साधुको देखा कि अपने महलमें ले जाकर ४-५ दिन तक खूब सेवा करता, पूजा करता, श्रद्धा भक्तिसे वंदन करता था। वैसेमें एक दिन ५ डाकु सन्तका भेष बनाकर राज दरबारके सामने गए। राजाने देखते ही अन्दर ले जाकर चरण प्रक्षालन किया। रानी, राजकुमार सबको प्रणाम करने लगाया। एक दिन राजा बन विहार करने गया। सन्त भेषमें छिपे डाकुओंको मौका लगा, वे लोग रानीको मार कर राज कोषसे काफी सम्पत्ति लेकर रफू चक्कर हो गए। संयोगवस उसी मार्गसे राजा जंगलसे आ रहा था। मुठभेड़ हुई। राजाने जल्दी घोडे से उतर कर उन सन्त भेषधारी डाकुओंके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा, भगवन्! मैं घरमें नहीं था, शायद रानीने आप लोगोंकी सेवामें त्रुटी की होगी इसीलिए

आप लोग रुठकर निकल गये। मुझे क्षमा करें और आप वापस दरबारमें चलें। डाकुओंके पसीने छूटे, अब क्या किया जाए? यहाँसे भागें तो चारों ओर सैन्य हैं। भाग नहीं सकते वापस चलें तो रानीको मार कर आए हैं। वे किंकर्तव्यविमूढ हो गए सोचा वैसे ही मरना तो निश्चत ही है। क्यों न सत्य को जाहेर कर ही मरें। वैसा सोचकर उन लोगोंने वास्तविकता प्रकट कर दी, कि हम साधु नहीं हैं, हम लोग रानीको मार कर सम्पत्ति लेकर आए हैं, हम तो डाकू हैं। ऐसी बात सुनते ही राजाने कानमें अंगुली डाली और कहा, नहीं....नहीं ऐसा कभी नहीं हो सकता। आपलोग छूटनेके लिए बहाने बाजी कर रहे हैं। आप ऐसा कभी नहीं कर सकते। आप लोग तो महान् हैं। सन्त जो करता वह ठीक ही करता है। यदि आप लोगोनें मेरी रानीको मार भी दिया हो, तो भी उसका यह सौभाग्य है। आप लोगोंके हाथसे मरनेसे तो मुक्ति ही होगी। आप लोगोंको वापस जाना ही पड़ेगा।

डाकुओंका कुछ न चला वापस गए। दरबारमें जाते ही राजाने सन्त डाकुओंकी आरती उतारी। अन्दर ले जाकर चरण धोया और वही चरणोदक दरवारके चारों ओर छिंटने लगा। इतनेमें राजाको पता चला कि सचमुच ही रानीको मारा गया है। किन्तु राजाने श्रद्धापूर्वक वही चरणोदक उस मृत शरीरमें छांट दिया। रानीके मृत शरीरमें वह चरणोदकका स्पर्श होते ही रानी उठ खड़ी हुई। सन्तोंको प्रणाम किया। उन डाकुओंको आश्चर्यकी सीमा न रही। ऐसी अनहोनी चमत्कृत घटनाको देख कर डाकुओंका हृदय परिवर्तन हुआ और डाकू वृत्तिको छोडकर वे सच्चे साधु बने।

जिस प्रकार मांगमें सिन्दूर, गलेमें मंगल सूत्र सोहागन नारीकी शोभा एवं चिन्ह हैं। अलंकार, छन्दोंसे कविताकी शोभा बढती है। इसी तरह साधु-सन्त धर्मकी शोभा एवं अलंकार हैं। आज जितने भी धर्मके प्रचार प्रसार हुए मठ, मन्दिर, तीर्थ स्थानोंकी शोभा हुई वह सब साधु-सन्तोंके द्वारा ही हुई है। साधु सन्तोंके बिना सम्प्रदाय शून्य लगता है। जैसे एक गृहस्थाश्रममें लड़के बच्चे कुछ न हों तो घर सुनसान लगता है, वैसे ही सम्प्रदाय तथा मन्दिरादि संतके अभावमें शून्य लगते हैं।

सन्तके विषयमें कहा है,

निन्दते वेदशास्त्राणि वैष्णवो ब्राह्मणस्तथा ।
षष्ठि वर्ष सहस्त्राणि विष्ठायां जायते कृमि ।।

जो वेद शास्त्रादि, साधु सन्त (वैष्णव) ब्राह्मणोंकी व्यर्थमें निन्दा करता है, तिरस्कार करता है उसे साठ हजार वर्ष तक नरकका कीड़ा बन कर बैठना पड़ेगा। यह तो इस पाञ्च भौतिक शरीको छोड़नेके पश्चात्‌की बातें हुयी। अब इसी जीवनकी ओर ध्यान मोड़े और इस दोहाको देखें,

साधु सतावे तीन गए, धन धर्म और वंश ।
देखा न हो तो देखलो, रावण कौरव कंश ॥

साधुओंको जो तिरस्कार करता है, उसका तीन प्रकारसे पतन होगा। धन, सम्पत्ति, धर्म और वंश समूल नष्ट हो जाएगा। इतना ही नहीं जरा और अवलोकन कीजिए। कहा है,

साधु देखे जल मरे, वेश्या देखे कर जोडाय ।
यही कारण कुत्ता भए, घर घर डंडा खाय ॥

साधु-संतकी रक्षा ही धर्म रक्षा है, और धर्मकी रक्षा ही आत्म रक्षा है। इस बातको हमेशा ध्यानमें रखें। साधु-सन्तोंकी महिमा अपार है। वेसुमार है। बड़े बड़े शास्त्रकार, ऋषि-मुनि भी सन्तोंकी महिमा गा नहीं सकते। ऐसे सच्चरित्रवान महान विभूति स्वरूप सन्तोंको मेरा प्रणाम है।

अमृत विन्दू

हम अपने दोषोंको बतलानेवालेको मित्रके समान मान लें । दोष बतानेवालोंको दर्पणका स्वरूप मानना चाहिए। क्यों कि दर्पण किसीका खुशामत नहीं करता। वह तो जैसा आकार हमारा है वैसा ही बतलायेगा। उसे किसीके खुशी और नाखुशीसे कोई सम्बन्ध नहीं है किसीकी खुशामत और हांजी.......हाँ.....करनेवाले हमारे हितेच्छुक शत्रु भी हो सकते हैं।

हमारे अन्दर बडप्पन है तो नम्रताका अनुसरण करें। हमारे पास सद्‌गुण है तो सभीके साथ प्रेम-भाव रखना सिखें। यदि हम धनवान हैं तो उदार वृत्तिवाले बनें। कदाच हम दुःखी हैं तो सहन शक्तिका अवलम्बन करना सिखें और इन सूत्रोंके द्वारा अपने जीवनको सुखी बनायें।

गुरुर्साक्षात् परब्रह्म
(गुरु भक्ति)

कृष्ण शास्त्री -श्री ५ नवतनपुरी धाम, जामनगर

मनुष्य केवल गुरुकी सेवासे भी परब्रह्म परमात्मा एवं अखण्ड परमधामको प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार वेद, शास्त्र, पुराण और वीतक आदिमें बहुत सारे उदाहरण मिलते हैं। गुरुको साक्षात् परब्रह्म परमात्माका प्रतिनिधि माना है। कहा भी है,

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुःसाक्षात् परब्रह्मः तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

स्वामी श्री प्राणनाथजी भी सद्गुरु श्री देवचन्द्रजी महाराजको साक्षात् धामधनीके रूपमें देखते थे। उनके जीवनकी एक घटना इस प्रकार है।

एक दिन वे अकस्मात् सोचने लगे, धामधनी स्वरूप सद्गुरु श्री देवचन्द्रजी महाराजको सदाकाल परमधामके सब पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं और वे हमें उनकें यथार्थ स्वरूपको समझाया करते हैं। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि हम भी परमधामको एवं श्रीराजजी महाराजके स्वरूपको इसी शरीरसे देख सकें।

सद्गुरु तो कहते ही हैं तुम परमधामकी वासना हो। तुमने ही श्री राजजीसे यह खेल माँगा था। अतः तुम्हें इसे दिखानेके लिए यहाँ पर भेजा है आदि आदि, यदि हम परमधामसे आये हैं तो क्या श्री राजजी हमारी इच्छा पूरी नहीं करेगें ? यदि हम परमधाम एवं श्री राजजी महाराजको नहीं देख सकते वहाँके स्वरूपोंको नहीं देख सकते तो या तो हम वहाँके नहीं हैं या हमारे अन्दर अवगुण भरे हुए हैं जिसके कारण हमें दर्शन नही हो रहे हैं। इस प्रकार विचार कर उन्होंने लौकिक विषयोंका परित्याग कर दिया और शरीरको कसौटी पर चढ़ाने लगे। ऐसा करनेसे विषयोंसे वैराग्य उत्पन्न होने लगा और परमधामके दर्शनोंके निरन्तर चिन्तनसे विरह प्रगट होने लगा।

प्रगट्यो अंग विरह अति, उरमें भयो विराग।
स्नेह न काहूँसों रह्यो, लख्यो जगत सम आग ॥

(वृत्तन्त मुक्तावली)

इस प्रकार शरीरको कसौटी पर चढ़ा कर विषयोंका परित्याग करनेपर भी दर्शन न हुए तो निजानन्द स्वामी सद्गुरु श्री देवचन्द्रजी महाराजकी शरणमें जा कर प्रार्थना करने लगे, हे धनी ! हे सद्गुरु ! मेरे शरीरमें कौनसा अवगुण रह गया है मुझे बता दीजिये क्योंकि मुझे अपने अवगुण नहीं दिख रहें हैं ।

तब सद्गुरु श्री देवचन्द्रजी महाराज ने कहा, हे मेहेराज ! तुम तो साक्षात् श्री इन्द्रावतीकी वासना हो । तुम्हारे अन्दर कोई विकार हो ही नहीं सकते, तुम इस चिन्तामें मत पड़ो । सद्गुरुके इन वचनोंको सुनकर मेहेराजको विचार आया सद्गुरु महाराज मुझे इन्द्रावतीकी वासना कहते हैं तो मुझे चाल भी वैसी ही चलनी चाहिये । ऐसा निश्चय कर निजानन्द स्वामीद्वारा जो ज्ञान सुनते थे उसे विवेचन कर सभी सुन्दरसाथको सुनाने लगे ।

लौकिक विषयोंका तो परित्याग कर ही चुके थे, अब शारीरिक विकारोंको कम कर आत्माको जाग्रत करनेकी इच्छासे आहार भी कम कर दिया, दिनमें एक बार मात्र भोजन करने लगे केवल शरीरको टिकानेके लिए । धीरे-धीरे उसे भी घटा दिया केवल दो पैसाभर रह गया, शरीर सुखकर कृश हो गया और इन्द्रियोंकी शक्ति भी क्षीण हो गई । इससे भी कुछ फर्क नहीं पड़ा तो उनके मनमें विचार आया कि घरमें रही हुई धन सम्पत्ति वस्त्र आभूषण आदि भी मनको चंचल बनाने वाले हैं इन्हें सद्गुरुके चरणोंमें समर्पण कर डालूँ संभव है कि ऐसा करनेसे हृदय निर्मल हो जायेगा । बाजारमें जा कर परीक्षा करूं मन किस ओर जाता है । इस प्रकार विचार कर बाजारमें जा कर मनको चारों तरफ दौडाकर देखते कि मन किस और दौड़ता है । मित्रसे नजर बचाना इत्यादि अनेक जतन करने पर भी उनका मनोरथ तो पूर्ण नहीं हुआ परन्तु अन्तर्वृत्ति परमधामकी और अभिमुख हो गई और आत्मामें एक दिव्यताका अनुभव होने लगा । शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया । यह देख कर बालबाईने चिन्तित होकर सद्गुरुके पास जाकर प्रार्थना की कि आप मेहेराजको बुलाकर समझा दीजिये ।

सद्गुरुने मेहेराजको अपने पास बुलाया और पूछा, हे मेहेराज ! तुम किस लिए इतना कष्ट उठा रहे हो ? दुख ना दीजिए देह को ।

मेहेराज ने कहा, हे सद्गुरु महाराज ! आप मेरे विकारोंको बता दीजिये ताकि मैं उनको दूर कर सकूँ और आत्माको निर्मल बना सकूँ । मैं इतना तो समझ गया हूँ कि आपमें और श्री राजजीमें अन्तर नहीं है आप धामधनी स्वरूप हैं परन्तु जैसे आप परमधामको देखकर वर्णन करते हैं और सब स्वरूपको पहचान लेते हैं इस प्रकार हमें क्यों नहीं होता ? इसका क्या कारण है ? कृपा करके बता दीजिये ।

सद्‌गुरुजी कहते हैं , हे मेहेराज ! यदि तुम मेरी तरह परमधामको देखना चाहते हो तो मुझे उठा कर इस गादीमें बैठ जाओ तुम्हें परमधाम दिखने लगेगा परन्तु परमधामके दर्शन मात्रसे अभी तुम्हारा ध्येय पूरा नहीं होगा । तुम तो सद्‌गुरुको साक्षात् स्वरूप जानकर सेवा करो उसीमें कल्याण हैं ।

देखै धामधनी मोहि, पलक न फेरै नैन ।
निसदिन दई प्रदक्षिणा, यही नफा दै ऐन ॥

वृत्तान्त मुक्तावली

मुखसे तो कहते हो कि मैं आपको धामधनी स्वरूप समझता हूँ परन्तु विश्वास नहीं रखते हो । यदि साक्षात् धामधनी स्वरूप समझते तो एक पलमात्र भी नेत्र न फेरते । इस प्रकार निजानन्द सद्‌गुरुने यथार्थ स्वरूपका रहस्य समझाया ।

बालबाईने भी समझाया, सद्‌गुरुकी सेवा करो यह समय बार–बार नहीं मिलेगा । इस प्रकारकी बात सुनकर परमधाम देखनेका मनोरथ दूर हुआ ।

ये बातें सब सुनते ही, भयो मनोरथ भंग ।
चूक बड़ी मोतें परी, समझ्यो नहिं अभंग ॥

अब तो बहुत पश्चात्ताप करने लगे, मुझसे बड़ी भूल हो गई जो साक्षात् धामधनी स्वरूप श्री सद्‌गुरुजीकी साक्षात् सेवा छोड़कर शरीरको कसौटीमें लगाता रहा और विश्वास भी न कर सका । मुझे तो सद्‌गुरुकी तन, मन, धनसे सेवा करनी चाहिये थी परन्तु मैं बाह्यदृष्टि रखकर भटकता रहा ।

कहनेका अभिप्राय यह है कि सद्‌गुरु साक्षात् परमात्माके प्रतिनिधि होते हैं जो उनपर विश्वास करके उनकी सेवा करता है तो उसका कल्याण होता ही है इसमें कोई सन्देह नहीं है और जो गुरुकी निन्दा करता है उनके कहे हुए मार्ग पर नहीं चलता है उसकी बड़ी बुरी अधोगति होती है । ऐसे लोगोंके लिए नरकमें भी कोई स्थान नहीं होता है । अपने गुरुके साथ असत्य आचरण करनेसे उसकी दुर्गति होती है ।

परिवादात्खरो भवति श्वा वै भवति निन्दकः ।
परिभोक्ता कृमिर्भवति, कीटो भवति मत्सरीः ॥

(मनुस्मृति : २/२०५)

गुरुको दोष लगाने वाला गधा, उनकी निन्दा करनेवाला कुत्ता, अनुचित रीतिसे उनके धनको भोगनेवाला कृमि और उनके साथ ईर्षा करनेवाला कीट होता है।

इसलिए उनके साथ असत् व्यवहार कभी नहीं करना चाहिये।

क्योंकि,

गोविन्द रूठे गुरु ठौर है गुरु रूठे नहीं ठौर ।

यदि गुरु रूठ जायें तो हमें कही भी शरण नहीं मिलेगी। गुरुके बिना किसीकी भी सद्गति नहीं होती। साक्षात् भगवानको भी गुरु धारण करना पड़ा था।

जो गुरुको ना जाने हैं जीवन उनका नरक समान ।

महामति भी कहते हैं,

मृगजल सों जो त्रिषा भाजे, तो गुरु बिना जीव पार पावे ।
अनेक उपाय करे जो कोई, तो बिंदका बिंदमें समावे ।।

किरन्तन २/७

जब स्वामी श्री प्राणनाथजीको अपने भूलका आभास हुआ तबसे उन्होंने जीवन पर्यन्त सद्गुरुजीको साक्षात् श्री राजजी महाराजका स्वरूप मान कर उनकी सेवा पूजा इत्यादि की।

इस प्रसंगसे हमें भी शिक्षा लेनी चाहिये कि हमें सद्गुरुको परमात्मा स्वरूप जान कर प्रेम, श्रद्धा निष्ठासे उन्हें पूजना चाहिये।

क्योंकि गुरुके समान इस ब्रह्माण्डमें कोई भी नहीं है।

कहा भी गया है,

चार वेद छ शास्त्रोंमें बतलाया गुरु महान, मूर्ख ! सबसे बड़ा तू जान ।।

सम्प्रदायकी पद्धतिमें भी इस प्रकार कहा गया है,

सतगुरु चरण को क्षेत्र है, जहाँ जाय सब शोक ।

इसलिये हे मानव ! जा सद्गुरुके चरण शरण ग्रहण कर, तुझे हर प्रकारके शोकसे निजात मिलेगा। तेरा हृदय पवित्र हो जायेगा और फिर परमपद परमधाम और मोक्ष मिलेगा इसमें कोई संसय नहीं है।

सद्गुरोश्चरणं क्षेत्रं, सर्वशुद्धिकरं परम् ॥

महेश्वरतन्त्र

यह है सद्गुरुकी महिमा। हमारे गुरुजन इन्हीं सद्गुरुके प्रतिनिधि हैं। हमें उनके प्रति ऐसी भावना रखनी चाहिए साथ ही हमें मर्यादाओंका भी ध्यान रखना चाहिए। हमारे गुरुजी सद्गुरुके प्रति कैसा भाव रखते हैं उसे भी समझना चाहिए। जब मर्यादाका क्रम आएगा उसमें ध्यान रखना होगा कि हमारे गुरुजीसे ऊँचा स्थान सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्रजी महाराज एवं महामति स्वामी श्री प्राणनाथजी महाराजका है। इसलिए कहीं भी आसन रखना होता है तो वहाँ पर इस मर्यादाका पालन करना चाहिए। इसका अतिक्रमण करेंगे तो यह गुरुभक्ति नहीं कहलायेगी। इसी प्रकारसे आगे बढ़ें तो हमें यह भी ख्याल रहना चाहिए कि सद्गुरु श्री देवचन्द्रजी महाराज एवं महामति स्वामी श्री प्राणनाथजी महाराजसे भी ऊँचा स्थान श्री राजजीका है। इसलिए श्री राजजीका स्थान सबसे ऊँचा होता है।

आप जहाँ बैठे हैं वहाँ पर अपने गुरुजीका आगमन होता है तो उनका स्थान आप सभीसे ऊँचा रखें। उस समय उनमें यह भाव रखें कि गुरुजी सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्रजी महाराज एवं महामति स्वामी श्री प्राणनाथजी महाराजके प्रतिनिधि स्वरूप हैं। उनके हृदयमें श्री राजजीके दर्शन करनेका प्रयत्न करें।

जहाँपर गुरुजी विराजमान हैं अथवा उनका आसन लगा रहे हैं वहाँपर सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्रजी महाराज एवं महामति स्वामी श्री प्राणनाथजी महाराजका भी आसन अथवा फोटो लगाना हो तो उनका आसन गुरुजीके आसनसे ऊँचा रखें। इस मर्यादाका भंग करनेसे गुरुद्रोहका दोष लगेगा। इसी प्रकार जहाँ पर श्री राजजीका सिंहासन या फोटो रखना हों वह गुरुजी या सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्रजी एवं महामति स्वामी श्री प्राणनाथजीके आसनसे और ऊँचा होना चाहिए। जो सुन्दरसाथ श्री राजजीका स्थान नीचा रखकर गुरुका स्थान ऊँचा रखते हुए गुरु भक्ति दिखाते हैं वह गुरु भक्ति नहीं अपितु गुरुद्रोह कहलाएगा। इसलिए मर्यादाओंका पालन विवेकपूर्वक करना चाहिए। शास्त्रोंने एवं गुरुजनोंने हमें भक्तिके साथ साथ मर्यादाओंका पालन करना सिखाया हैं इसलिए हमें मर्यादाओंके पालन करते हुए भक्ति करनी चाहिए।

प्रेमलक्षणा भक्ति

गोस्वामी श्री सदानन्दजी महाराज (पं श्री लालबाबू मिश्र)

(गतांक..२९ पृष्ठसे आगे.........)

प्रेमलक्षणा भक्तिकी महिमा

यों तो प्रेमलक्षणा भक्तिकी वास्तविकता शब्दातीत है, उसके वर्णन करनेका साहस करना दरिद्रके मनोरथ-सा है, सीपमें सागर भरनेके समान है, फिर भी यदि उसे किंचित् इंगित मात्रसे निर्देश करनेका साहस भी किया जावे तो इस छोटेसे जीवनमें समयका संकुचन ही नहीं, अभाव भी है। अव्यवधान सृष्टिके आदि कालसे अद्यावधि उसका वर्णन होता आ रहा है। अपितु उसकी 'इतिश्री' अनन्तकी पृष्टपर ही अंकित होगी। सच तो यह है कि प्रेमलक्षणा भक्ति वर्णन करनेकी वस्तु नहीं है प्रत्युत उसे धारण करनेसे ही उसके वास्तविक रहस्यका यथा मात्र अनुभव हो सकता है। उसके पूर्ण तत्त्वका तत्त्वज्ञ वही है जिसकी अन्तरात्मा उससे पूर्णतया परिप्लावित है। उसका वर्णन करनेमें शिव, विष्णु ब्रह्मा, शेष शारदा आदि कोई ऋषि-मुनि, मानव-दानव समर्थ नहीं हैं। हों भी कैसे ? वह भक्ति भक्तोंको प्राणस्वरूपा है और उन भक्तोंका भक्त स्वयं उनके प्रीतम हैं। प्रेमा भक्तिके प्रभावसे उनकी गति अनन्त और अगम्य है। स्वयं भगवान उनकी अगम्यता पर मुग्ध हैं।

अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूययेत्यङ्घ्रि रेणुभिः ।

श्री कृष्ण कहते हैं, हे उद्धव ! उन भक्तोंकी चरण रेणुसे अपनेको पावन करनेके लिये मैं सदा उनके पीछे पीछे घूमा करता हू।

धन्य हैं ! धन्य हैं ! वे भक्त, जिनकी भक्ति स्वयं भगवान करते हैं। अरे ! भगवान तो भगवान ठहरे अपितु परुषोत्तम प्रभुने उपरोक्त भगवद्वाक्यको पूर्णतः चरितार्थ किया था। वे गोपी प्रेममें ऐसे वशीभूत थे-कि सदा व्रजललनाओंके पीछे पीछे छायाकी भाँति लगे रहते थे। उनकी अनुकूलताकी अपेक्षा किया करते थे। जिस प्रकार वेदांत विज्ञानी व्यक्तिकी दृष्टिमें सर्वत्र ब्रह्म ही दीख पड़ता है उसी प्रकार पुरुषोत्तम श्री व्रजचन्द्रकी दृष्टिमें भक्त शिरोमणि गोपिजन दीख पड़ती थीं। उन गोपीयोंकी महिमा जो शास्त्रोमें वर्णित है वास्तवमें वह उनके प्रेम-प्रभावसे नहीं, प्रत्युत इसलिये कि उनकी भक्ति पुरुषोत्तम प्रभु करते हैं।

इसमें संदेहकी कोई बात नहीं, क्योंकि 'जिसको पिया माने उसीका सुहागिन नाम' यह लोकोक्ति अत्यन्त सत्य है। जिसे स्वयं परमात्मा प्यार करेंगे, महिमा प्रदान करेंगे तथा अदब करेंगे उसे दूसरा कौन अस्वीकार कर सकता है ?

प्रेम लक्षणा भक्ति परमात्मासे निकटतम सम्बन्ध रखती है। परमात्मा प्रेमकी सर्वोपरि एक महान् पुंज है और लोक अथवा परमलोकमें जो प्रेम है वह न्यूनाधिक मात्राभेदसे उसीका अंश है। यह परमात्म सम्बन्ध प्रेम ब्रह्मात्माओंको तथा उसके तटस्थ सम्बन्धीयोंको ही सुलभ है।

परमेश्वरसे गोपिकाओंका अभेद सम्बन्ध था इसीलिए वे सब पूर्ण-प्रेम स्वरूपा थीं। भक्ति पक्षके आचार्योंने भक्तिके प्रसंगमें उदाहरणका सर्वोच्च स्थान उन्हीं गोपिकाओंको प्रदान किया है, नहीं तो सृष्टिके आदि कालसे अद्यावधि भगवानके अनेक आदर्श भक्त हो गये परन्तु वे उदाहरणका सर्वोच्च स्थान नहीं प्राप्त कर सके। कतिपय भक्त तो गोपिकाओंके निकट तक पहुँचे हुए पाये जाते हैं मगर फिर भी उन्हें आदर्शका वह सीट नहीं मिल सका जो गोपिकाओंको सहज-सुलभ है। इसका मुख्य कारण सिर्फ इतना ही है कि वे भक्त गुणात्मक थे, उनकी भक्ति (नवधा किंवा योग) गुणात्मिका थी तथा उनके आराध्य देव (ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं प्रणवादि) गुणात्मक हैं। मगर गोपिकायें स्वयं गुणातीत हैं उनकी भक्ति (परा-प्रेमलक्षणा) गुणातीत है एवं उनके हृदयेश (आनंदकंद परब्रह्म परमेश्वर) भी गुणातीत हैं, इसलिए उन (गुणात्मक) भक्तोंमें और गोपिकाओंमें बहुत-सा अन्तर है। इसलिये वे उदाहरणके यथार्थ पात्र नहीं है और नहीं प्रेमलक्षणा भक्तिके पात्र हैं। प्रेमाभक्तिका पात्र गोपीजन ही हैं और प्रेमलक्षणा ही गोपीजनका जीवन है। देवर्षि नारदजी प्रेमाभक्तिके उदाहरणमें उन्हीं गोपिकाओंका निर्देश करते हैं,

'यथा व्रज गोपिकानाम्' (नारद भक्ति सूत्र-२१)

प्रेमाभक्ति वही है जो गोपिकाओने की है। इस नारद कथनसे सिद्ध होता है कि प्रेम लक्षणा भक्ति गोपिकाओंके अतिरिक्त अन्य किसी भक्तको प्राप्त नहीं हुई है। संसारके जितने भक्त हो गये वे प्रेम लक्षणाका तत्त्वतः नाम रूप भी नहीं जानते थे वह भी तो इन्हीं गोपिकाओंने ही प्रगट किया है।

गोपि-प्रेमका प्रभाव

गोपिकाओंने अपने प्रेम-प्रभावसे कितनी ही बार श्री कृष्ण चन्द्रको मन्दान्क्ष किया था। मृग-नेत्रको परिहास्य करनेवाले अपने तीरछे नेत्रोंके संकेत पर कुञ्ज कुटिरमें उन्हें कर-ताल दे दे कर अपने पेट भर नचाया था, तथा उन्हें अपना आभारी बनाया था।

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि व : ।
या माभजन दुर्जर गेह शृखला संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना ।।

(श्रीमद्भागवत १०-३२/२२)

श्री कृष्ण चन्द्र गोपिकाओंके प्रेम पाशमें आबद्ध होकर कहते हैं, 'हे गोपियों, तुमने मेरे लिए घरकी कठिन बेड़ियोंको तोड़कर मेरा भजन किया है, तुम्हारा यह कृत्य (लोक वेदकी मर्यादाका उल्लंघन करके अपना सर्वस्व मेरे लिए अर्पण करना) सर्वथा निर्दोष है। तुमने जो मेरे साथ उपकार किया है उसका तुम अपनी ही साधुता(उदारता)से मेरा ऋणोद्धार करो।

धन्य है उन व्रज-वनिताओंको, जिनके प्रेम-पुञ्जका बदला देनेमें साक्षात्पुरुषोत्तम श्री कृष्णचन्द्र भी अपनी असमर्थता प्रगट करते हैं, इतना ही नहीं कई बार उनसे हारकर उन्हें अञ्जलिबद्ध होना पड़ा था। भले ही भक्ति पक्षके राग अलापनेवाले गाया करें कि गोपियाँ श्री कृष्णको असीम सेवा सश्रूषा करके उन्हें प्राप्त हुई है, परन्तु मुझे तो गोपियोंकी सुश्रुषा श्री कृष्णचन्द्रको करते देखकर यह निश्चय होता है कि प्रेमस्वरूपा व्रजललनाओंकी सेवा सदा उनके प्राणवल्लभ श्री कृष्ण ही करते हैं तथा उनकी अनुकूलताके सदा अपेक्षित हैं।

प्रेम-स्वरूपा गोपियोंकी महिमा स्वयं पुरुषोत्तम भी वर्णन नहीं कर पाते तो क्षुद्र बुद्धिका मनुष्य किस क्यारीका धान्य है ? अतएव उनके प्रेम-सम्बन्धमें कुछ कहनेकी अपेक्षा सिर्फ श्रद्धा युक्त मौन होकर उनके श्रीचरणोंका ध्यान करना यही श्रेयस्कर हैं। उन प्रेम-मूर्तियोंसे मेरी यही याचना है कि वे सदा मुझपर दया करके अपनी अनन्या भक्तिका प्रसाद-प्रदान करें। और जिस प्रकार वे प्रेम-पोत पर चढ़कर क्षणमात्रमें भवाम्बु पार कर गयी हैं उसी प्रकार मुझे भी शक्ति प्रदान करें।

एको धर्मः परं श्रेय क्षमैका शान्तिरुत्तमा ।
विद्यैका परमा तृप्तिरहिंसैका सुखावहा ।।

केवल धर्म ही परम कल्याणकारक है, एकमात्र क्षमा ही शान्तिका सर्वश्रेष्ठ उपाय है । एक विद्या ही परम सन्तोष देनेवाली है और एकमात्र अहिंसा ही सुख देनेवाली है ।

समाचार दर्पण

श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर दीव

सम्वत सत्रह सै बाईसे, दीव पधारे श्री राज ।
दो बरस तहाँ रहे, सब पूरे मनोरथ काज ।।

महामति श्री प्राणनाथजी विक्रम सम्वत १७२२ में दीव गए थे। अहमदाबादसे श्री ५ नवतनपुरी धाम जामनगर लौटकर अपना कार्यक्रम प्रकाशित किए बिना वे सीधा दीव पहुँचे। श्री बाईजी राजको भी उन्होंने बादमें बुलाया। वहाँ पर वे दो वर्ष पर्यन्त रहे। दीवमें जयरामभाई कंसारा नामक सुन्दरसाथ रहते थे। उनकी जागनी सद्‌गुरु श्री देवचन्द्रजी महाराजके द्वारा हुई थी किन्तु अपना व्यवसाय करते हुए वे धर्मकार्यके प्रति अधिक समय नहीं लगाते थे। सामान्य सद्‌गृहस्थकी भाँति नियमित पूजापाठ करना और अपना व्यवसाय करना यही उनकी दिनचर्या थी। ब्रह्मात्माओंके आगमनका मूलभूत उद्देश्य, स्वयं जागृत हो कर दूसरोंको भी जागृत करना, से परिचित होते हुए भी वे सद्‌गुरुको दिए हुए अपने वचनोंका परिपालन नहीं कर पा रहे थे। ऐसेमें महामति श्री प्राणनाथजीने वहाँ पधार कर उन्हें अपने कर्तव्यके प्रति जागृत करते हुए कहा,

कबलों काँसा कूटेगा, कबलों हथौड़ा एरण ।
कबलों घरमें बैठेगा, आई शिर पर क्यामत रोसन ।।

यह मुरदार चौदह तबक, सो अब होत है नास ।
कछू सरम न आई हककी, तुम कहावत गिरोह खास ।।

अरे जयराम भाई ! हाथमें हथौड़ा लेकर तुम कब तक काँसा कूटते रहोगे ? मौत की घड़ी कब सामने आयेगी इसका पता ही नहीं चलेगा। यह घर सदाके लिए नहीं है। जब सारी दुनियाँ ही नष्ट हो जायेगी तब दुनियाँकी यह दौलत भी तो नष्ट होगी। तुम तो अविनाशी परमधामके हो। सद्‌गुरुने तुम्हें तारतम ज्ञान देते हुए परमधामकी बात समझा दी थी। तुम्हें परमधामकी आत्माके रूपमें पहचान कर स्वयं जागृत होते हुए अन्य आत्माओंके जागृत करनेका दायित्व सौंपा था। तुम तो सब कुछ भूल कर मायामें बैठ गए। मात्र नियमित पूजा-पाठसे अपना कर्तव्य पूर्ण नहीं होता है।

परमधामकी आत्माको तो स्वयं जागृत होकर दूसरोंको भी जगाना पड़ता है । तुम अपने मूल स्वरूपको देखो, तुम्हारी पर आत्मा परमधाम मूलमिलावामें श्री राजजीके समक्ष बैठी है । तुमने ही तो मायाका खेल देखनेकी इच्छा की थी और धामधनीको ये वचन भी दिए थे कि हम मायामें जाकर भूलेंगे नहीं । दूसरोंको जगानेकी बात तो दूर रही तुम स्वयं भी भूल गए हो । अपनी बुनियादको याद करो, व्रज और रासकी लीलामें भी तुम थे । इस जागनी लीलामें भी तुमने सद्गुरुके द्वारा तारतम ज्ञान प्राप्त किया है । फिर भी सद्गुरुके विषयमें तुम्हें कोई ख्याल नहीं रहा । सद्गुरु मेरे हृदयमें बैठ कर तुम्हें अपने कर्तव्यका बोध करवा रहे हैं । अब मायामेंसे उठो, जागो और अपने कर्तव्यका पालन करो ।

बस, क्या था इतने वचन सुनते ही जयराम भाईको धाम, परमधाम, व्रज, रास एवं जागनी लीलाका स्मरण हो आया । ब्रह्मात्मा तो थे ही और सद्गुरुका सानिन्ध्य भी प्राप्त हुआ था । महामतिजीने उन्हें कर्तव्यका बोध कराया, तभी उनकी आत्मा जागृत हो उठी । उन्होंने घर बार सहित अपनी सम्पत्ति महामतिके चरणोंमें सौप दी । उनका घर अब घर नहीं रहा श्री कृष्ण प्रणामी धर्मका मन्दिर बना । महामतिजीने इस प्रकार दीवमें श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिरकी स्थापना कर वहाँपर सत्संग चर्चा करना आरम्भ किया । दो वर्ष पर्यन्त वे वहाँ रहे । जागनी भी अच्छी हुई किन्तु केवल दीवमें रहना महामतिके लिए ठीक नहीं था । श्री राजजी उनसे देश विदेशका भ्रमण करवाकर विभिन्न स्थानोंमें विखरी हुई ब्रह्मात्माओंकी जागनी करना चाहते थे । इसलिए एकके पश्चात् एक निमित्त ऐसे बनते गए जिससे महामतिने वहाँसे प्रस्थानकर समुद्रके किनारमें स्थित विभिन्न नगरोंकी यात्रा आरम्भ की ।

धर्मप्रेमी सुन्दरसाथजी ! यह दीवका संक्षिप्त इतिहास है । विस्तृत विवरणके लिए आप वीतकोंका अध्ययन कर सकते हैं । हम यहाँपर आपको यह याद दिलाना चाहते हैं कि दीवमें स्थित श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर महामति श्री प्राणनाथजीके समयसे ही है । समय-समय पर इसमें सुधार होते रहे हैं और भविष्यमें भी होते रहेंगे किन्तु यह स्थान वही है ।

आपको यह भी बता दें कि दीव शहरसे करीब १२ कि. मी. की दूरी पर वणाकवाड़ा नामक दूसरा छोटासा नगर है । वहाँपर भी लगभग २०० वर्षोंसे दो मन्दिर अस्तित्वमें थे किन्तु वहाँके सुन्दरसाथ व्यवसाय हेतु बाहर चले गए और २५-३० वर्ष पूर्व मन्दिरको भी बेच डाला । यह बड़े ही खेदकी बात है । दीव द्वीपके अन्तर्गत

स्थित तीन मन्दिरोंमेंसे आज एक ही मन्दिर अस्तित्वमें है। जिस मन्दिरकी स्थापना महामति श्री प्राणनाथजीने की है वह तो कैसे अस्तित्वविहीन हो सकता ? यह मन्दिर आज श्री ५ नवतनपुरी धामके मार्गदर्शनमें विकसित हो रहा है। मन्दिरके नवनिर्माणके लिए बहुत बड़ी योजना बनायी गई है जिसमें विशाल कलात्मक मन्दिर, क्षर, अक्षर और अक्षरातीतका ज्ञान करवानेवाली प्रदर्शनी एवं आधुनिक सुविधायुक्त आवास सम्मिलित हैं। यह एक विशाल आयोजन है। आप सभीके सहयोगसे ही यह सम्पन्न होगा। इसलिए इस पुनितकार्यके लिए आप सभीका अनुदान अपेक्षित है। आप स्वयं भी योगदान दें और दूसरोंसे भी दिलायें।

भव्य कार्यक्रम :

ऐसी महिमा मण्डित भूमिपर दिनांक १५ से १७ अप्रेल २०१० पर्यन्त श्री तारतम सागरके पञ्च अखण्ड पारायणके साथ त्रिदिवसीय कार्यक्रम बड़े ही भव्यता एवं दिव्यताके साथ सुसम्पन्न हुआ।

शुभारंभ : दिनांक : १५ अप्रैल २०१० के शुभ प्रभातमें विशाल शोभायात्राके साथ श्री तारतम सागरके ५ पारायणका शुभारंभ बहुत ही सुन्दर ढ़ंगसे हुआ। उसी दिनसे मन्दिरमें श्री ५ नवतनपुरी धाम एवं भिन्न भिन्न स्थानोंसे पधारे हुए संतों द्वारा सत्संग-प्रवचनरूपी अमृत पान कर उपस्थित सुन्दरसाथ भक्ति रसमें तरबोर होते थे और रात्रिकालीन मंचमें रास एवं गरबाका आनन्द लेते थे।

शोभायात्रा : दिनांक : १५ अप्रैल २०१० को प्रात: विशाल शोभायात्राका आयोजन किया गया। बस अड्डासे प्रारंभ हुई इस भव्य शोभायात्राके केन्द्रमें श्री कृष्ण प्रणामी धर्मके वर्तमान धर्माचार्य जगद्गुरु आचार्य श्री १०८ कृष्णमणिजी महाराज थे जो विशाल रथके ऊपर विराजमान थे। जिनके दर्शन कर उपस्थित संपूर्ण सुन्दरसाथ अपने आपको धन्यभागी समझ रहे थे। रथके चारों ओर अनेको सुन्दरसाथ भजन, कीर्तन एवं रास गरबा गाते हुए, झूमते हुए भक्ति रसमें डूब रहे थे। इस प्रकार शोभायात्रा नगर परिक्रमा करती हुई मन्दिर प्रांगणमें पहुँची। मन्दिर पहुँचते ही त्रि त्रिवसीय अखण्ड पारायणका आरम्भ हो गया उसके बाद सभामंडपमें जाकर परम पूज्य आचार्य महाराजश्रीने समस्त सुन्दरसाथको आशीर्वचनका लाभ प्रदान किया। भोजनादिके पश्चात् सायंकाल भी सत्संग चर्चाका आयोजन होता था। रात्रिकालमें नित्य प्रति रास गरबाका कार्यक्रम होता था।

पूर्णाहुति : दिनांक १७ अप्रैल २०१० प्रातः ९.०० बजे परम पूज्य आचार्य महाराजश्री द्वारा त्रिदिवसीय ५ पारायणकी पूर्णाहुति हुई । उक्त अवसर पर श्री ५ नवतनपुरी धाम एवं भिन्न–भिन्न स्थानोंसे पधारे हुए संतों तथा नवतनपुरी धामके ट्रस्टियों सहित अनेक सुन्दरसाथकी सुन्दर उपस्थिति थी ।

झंडारोहण : पारायण पूर्णाहुतिके पश्चात् मन्दिरके शिखर पर परम पूज्य आचार्य महाराजश्रीके कर कमलों द्वारा झण्डारोहण सम्पन्न हुआ। तत्पश्चात् सभी सुन्दरसाथने भोजन प्रसाद ग्रहण कर अपने अपने स्थानको प्रस्थान किया ।

श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर दीवके संचालक श्री लीलाधर शास्त्रीके नेतृत्वमें आयोजित इस भव्य कार्यक्रमको सफल बनानेमें पृथक–पृथक स्थानोंके अग्रगण्य सुन्दरसथने महत्वपूर्ण सहयोग दिया। सभीको श्री ५ नवतनपुरी धाम एवं परमपूज्य आचार्य महाराजश्रीका शुभाशीर्वाद ।

एक संतका उपदेशामृत

धन, सम्पत्ति, परिवारको छोड़कर वनमें रहनेकी आवश्यकता नहीं है किन्तु आवश्यक है लोभ, मोह, मान, काम, क्रोधका त्याग। यह तभी होता है, जब साधक विनाशीके परे अविनाशीको जान लोता है। नित्य एकरस रहनेवाले आत्माको जान लेता है ।

वाणीके मौनसे शक्ति बढ़ती है, मनके मौनसे अन्तर्दृष्टि खुलती है, बुद्धिके मौनसे 'स्व' के सत्य तत्त्वकी अनुभूति होती है ।

निष्काम होकर कर्तव्य पालनसे अथवा सेवा करते रहनेसे अन्तःकरण शुद्ध होता है। अन्तःकरण शुद्ध होनेसे तत्त्वज्ञान होता है। तत्त्वज्ञान होनेपर प्रज्ञा स्थिर होती है। प्रज्ञाके स्थिर होनेपर ही परमानन्द परमात्माका निरन्तर बोध होता है।

जो कुछ अनेक है, वही संसार है । इच्छाएँ, वासनाएँ, विचार, कल्प तथा दृश्य अनेक हैं, ये ही संसारकी परिधिमें हैं । विवेक, चैतन्य, ज्ञान, प्रेम एक ही है । वही 'एक' 'मै हूँ' के स्वरूपमें विद्यमान है। अनेकताकी लोल लहरोंके नीचे एकताका शान्तिमय धरातल है ।

प्रभुके समक्ष केवल अपने 'मैं' को समर्पित करना होता है और संसारके समक्ष जो कुछ प्रभुसे मिला है उसे अर्पित करना होता है। अपने 'मैं' को समर्पित करनेका साहस कर सको तो अपने 'मैं' के स्थानपर पूर्ण प्रभुको पा जाओगे ।

मनुष्यका शरीर एक दीपककी भाँति है और चेतना दीपकमें जलती हुई 'लौ'की भाँति है। मिट्टीके दीयेमें ध्यान रहा तो जीवन व्यर्थ है। दीपककी ज्योतिमें अनन्त प्रभुके दर्शन होते हैं।

जब मनमें व्यर्थ संकल्प-विकल्प एवं व्यर्थ विचार उठते हों, तब प्रभुके प्रिय नाम अथवा अपने इष्टमन्त्रका अधिक-से-अधिक जप करना चाहिये, फिर व्यर्थ संकल्प एवं विचार अपने-आप शान्त हो जाते हैं और अन्तःकरणमें प्रियतम प्रभुका 'प्रसाद' प्राप्त होता है।

मूढता दूर होनेपर 'मैं' के स्थानपर 'तू-ही-तू' और 'मेरा' के स्थानपर 'तेरा-ही-तेरा' दीखने लगता है। अपने भीतर प्रभु-सम्बन्धी भावों, विचारोंको भरे रहो, मनको खाली न रखो। खाली रखनेसे ही संसार-प्रपंच घुस जाएगा। जितनी बुराइयाँ होती हैं, वे सूनेपनमें ही होती हैं। इसलिये बुराइयोंसे बचना है तो मनमें पवित्र भाव भरे रहो, सुसंगतिसे घिरे रहो, सदा शुभकर्ममें लगे रहो। अवकाश मिलते ही प्रभुके ध्यानमें, 'स्व' के अध्ययनमें, नामस्मरणमें, जपमें समयको सार्थक करो। व्यर्थमें ही अनर्थ होता है।

संसारमें, प्रिय सम्बन्धियोंके संयोगमें, इन्द्रियोंके विषयभोगमें, धन-अधिकारमें सुख माननेवालो ! सावधान होकर समझ लो, तुम्हारे सुखका अन्त दुःखमें होगा, क्योंकि जो कुछ तुम्हें मिला है, वह किसी समय अवश्य ही छूट जायेगा। जिसे हम नहीं जानते, वही अपना सर्वस्व है, क्योंकि वह हमें जानता है। हमें विश्वास रखना चाहिये कि अपना परमाश्रय एकमात्र वही अकारणकरुणामय प्रभु ही है और वह हमारी प्रत्येक चेष्टा, प्रत्येक भावना तथा प्रत्येक विचारके साथ ही है। वह हमारे विचारों, भावनाओं, चेष्टाओंके मध्यमें ही विद्यमान है। इसका अनुभव हम पूर्ण मौन, शान्त और विचार शून्य होकर ही कर सकते हैं।

अशुभ संकल्पोंका त्याग करो, शुभ संकल्प प्रभुकी कृपासे पूर्ण होंगे। वे संकल्प अशुभ हैं, जिनकी पूर्तिके साधन सुलभ नहीं हैं अर्थात् जिनकी पूर्ति किसी व्यक्तिकी सहायतासे पराधीनतापूर्वक होती है। दूसरोंकी सेवा करना, दान करना, तीर्थयात्रा करना, संतोंका संग करना तथा एकान्त-सेवन करना शुभ है। स्वयं ही

तीर्थस्वरूप होकर अपने संगसे दूसरोंको पवित्र बनानेकी प्रेरणा लेने दो। शान्त बैठ जाओ। शरीरसे शान्त बैठनेपर शरीरके भीतर जो कुछ स्वत: होता है, तटस्थ होकर देखो। कोई निर्णय, आग्रह, निग्रह न करो। बस, देखते रहो। इस निरीक्षणसे चेतनद्वारा अचेतनमें प्रवेश होता है। देखकर घबरा न जाना, बाहरकी और न भागना, निरीक्षणमात्र करते रहना, यहाँ शान्ति एवं धैर्यकी परीक्षा देनी होगी। इस अचेतन स्तरसे ही कामना एवं वासनासे मुक्तिका द्वार मिल जाता है।

परमात्मा तुम्हारी सभी दशाओंमें विद्यमान है। भोगमें, रोगमें, आधि–व्याधिमें जहाँ कहीं तुम हो, वहीं वह छिपा है। इसी प्रकार तुम जब उसे पुकारते हो, तब वह तुम्हारी पुकारके ही बीचमें है, जब उसे खोजते हो, तब खोजके ही साथ मिलता है, जब उसके लिये व्याकुल होते हो, तब व्याकुलताके माध्यमें ही वह है। जब तुम कुछ नहीं होते हो, कुछ नहीं बनते हो, कुछ नहीं चाहते हो, सर्वथा शान्त एवं अन्तर्मुख हो जाते हो, तब वह तुम्हारे समक्ष हो जाता है। जब अपने–आपमें पूर्ण प्रेमके रूपमें नित्यप्राप्त प्रभु अनुभवमें आते रहें, तभी भक्तिकी पूर्णता होती है।

नित्यप्राप्तका दर्शन ही ज्ञान है, नित्यप्राप्तसे निरन्तर मिलन ही भक्ति है।

लेखकको के लिए

आप श्री तारतम सागर, वीतक, चर्चनी, विराट, सेवापूजा आदि पर आधारित आध्यात्मिक ज्ञानपूर्ण विभिन्न लेख, एवं भक्ति रस प्रधान भजन तथा काव्य प्रेषित कर सकते हैं। आप सभीसे विनम्र अनुरोध है कि अपना लेख सुन्दर एवं सुवाच्य होनेके साथ–साथ कागजके एक ही तरफ लिखें। सम्भव हो तो कम्प्युटरमें Type कर प्रेषित करें। जो लेख मात्र इस पत्रिकाके लिए भेजा जाता है उसको प्राथमिकता दी जाती है।

इस पते पर पोष्ट कर सकते हैं,

श्री कृष्ण प्रणामी धर्म पत्रिका, श्री ५ नवतनपुरी धाम खीजडा मन्दिर, जामनगर, गुजरात ३६१००१

फोन (०२८८) ३२०२८२९ अथवा (०२८८) २६७२८२९

प्रातः स्तुति

श्री राज परमानन्द पूरणब्रह्म प्रभु परमेश्वरम् ।
अद्वैत अक्षरातीत सच्चिदानन्द घन सर्वेश्वरम् ।।
विनवत तुम्हें कर जोर कर हे नाथ मम प्रीतम परम् ।
श्री श्यामाजी राज छबि कुरु वास मम मन मन्दिरम् ।। १ ।।

श्री कृष्ण आनन्द कन्द गोकुल चन्द्र यशोदा नन्दनम् ।
ध्यावहि सदा जेहि ध्यान धर शिव शेष मुनिजन रंजनम् ।।
प्रकटे सोई प्रभु आये पर ब्रह्म पूरण रूपकम् ।
धनभाग्य यशोदानन्द के, ब्रह्म खेलत जिन मन्दिरम् ।। २ ।।

बलिहार कोट काम छबि पर रूप श्यामल सुन्दरम् ।
उर माल भाल विशाल तन सोहे परम पीताम्बरम् ।।
शोभा परम मुख मण्डलम् शुभ नासिका अरु लोचनम् ।
वंशी विभूषित हस्त अरु श्रवन सुन्दर कुण्डलम् ।। ३ ।।

हरण भूतल भार प्रभु खल दैत्य वंश निकन्दनम् ।
करधार गिरवर तुमलियो अरु मान सुरपति मर्दनम् ।।
श्री रासेश्वरी मिल रास कीन्हो विहार वृन्दा काननम् ।
करु वास मम उर आय के राधिका नट नागरम् ।। ४ ।।

बन्दहुं सुमंगल हेत नित श्री देवचन्द्र सद्गुरु परम् ।
श्री प्राणनाथ केशव सुवन जो जाग्रति ज्ञान स्वरूपकम् ।।
साकुण्डल श्री छत्रसाल को वन्दहुं बल बुद्धि कारणम् ।
कोटिबार 'विशाल' विनवहुं गुरु पावन पद पंकजम् ।। ५ ।।

संकलन : कविवर विशालसिंह शाक्य

रसोई सेवा

०१.सन्त श्री गोपालदासजी	श्री ५ नवतनपुरी धाम
०२.धा.वा. आरतीबेन दिनेशभाई वरू	तनसवा
०३.श्री वल्लभभाई रामजीभाई वसोया	चन्द्रागा
०४.धा.वा. लालजीभाई लखनसीभाई टांक	अंजार
०५.एक सुन्दरसाथ की ओरसे गुप्त सेवा	-
०६.धा.वा. खीमानन्दभाई हमीरभाई सोलंकी	आम्बलीया
०७.श्री नारणभाई जीवाभाई जोगल	कुतियाणा
०८.धा.वा. जिज्ञेशभाई किशोरभाई सावलीया	जामनगर
०९.धा.वा. केशुभाई भूराभाई रूपापरा	जामनगर(लालवाडी)
१०.श्री आनन्दभाई वसन्तभाई वेकरीया	जामनगर
११.श्री कृष्ण मोटर्स ह. श्री जगदीशभाई गान्धी	मुम्बई
१२.श्री कालाभाई हरदासभाई लुवा	धरसन
१३.धा.वा. नवीनभाई झीणाभाई कमाणी	राजकोट
१४.धा.वा. वाघजीभाई भूपतसिंह वारा	जामनगर
१५.श्रीमती सरोजबाला ठाकुर	चन्डीगढ़
१६.श्री मणीभाई भोवानभाई वागडीया	धावा(गीर)
१७.श्री मोहनभाई खोड़ाभाई सावलीया	जामनगर
१८.श्री नरेशभाई कान्तीलाल पूजाभाई पटेल	मोयद/वास नाथाजी
१९.धा.वा. बचीबेन शिवलाल वसीयर	जामनगर
२०.श्री विजयभाई श्यामजीभाई पटेल	राजकोट
२१.श्री प्रवीणभाई मगनभाई कोटडीया	वेडीया
२२.श्री अमीचन्दभाई हीराभाई पटेल	फतेपुर
२३.श्री नरोत्तमभाई हरजीवनभाई कोटेचा	पोरबन्दर

२४.श्री करशनजी नानजी गोहिल	जामनगर
२५.श्री पोपटभाई कल्याणभाई कोरडीया	माणीला
२६.श्री रासबिहारी कानजीभाई सभाया	राजकोट
२७.श्री गिरधरभाई भगवानजीभाई राखोलीया तथा श्री रामजीभाई रवजीभाई कालसरीया	रातीधार
२८.श्री बबुबेन मूलचन्दभाई हलवासनवाला	मुम्बई
२९.श्री कृष्ण प्रणामी महिला मण्डल	राणाकण्डोरडा
३०.श्री लीलाधरभाई वाघजीभाई सोजित्रा	जामनगर
३१.श्री रमणभाई ईश्वरभाई पटेल	अरेरा
३२.श्री डाह्याभाई जीवराजभाई भण्डेरी	माण्डासण
३३.धा.वा. लीधीबेन छगनलाल वाढेर	अन्जार
३४.श्री लक्ष्मणभाई शामजीभाई	अरला
३५.श्री परबतभाई लखमणभाई सोलंकी	आम्बलीया
३६.श्री सवजीभाई नागजीभाई	चलाला
३७.श्री भानुबेन अरजनभाई आहीर	मुम्बई

साहित्य सेवा

ताकछाङ्ग वस्ती इस्ट सिक्किम निवासी प्रिनसीपल श्री जयनारायण दुलालजीने २ जुलाई २००९ को नवगृह प्रवेश किया उसकी खुशीमें पत्रिकाकी साहित्य सेवामें रु. १००/ अर्पण किये हैं।

शुकलाई(आसाम) : धा.वा. श्री भवानी कटेलजीका धामगमन दिनांक ६–४–२०१० के दिन हुआ हैं उनकी पुत्री तुलसाबाई अधिकारीने(निवास मेघालय तर्फसे) अपने पिताके नाममे पत्रिकाकी साहित्य सेवामें रु.१५१/ भेट किये हैं। श्री राजजी गतात्माको अपने चरणोंमें लें ऐसी प्रार्थना।

(१-१५) श्री ५ नवतनपुरी धाम द्वारा संचालित श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर दीवमें दिनांक १५-४-२०१० से १७-४- २०१० पर्यन्त आयोजित अखण्ड पारायणके विविध दृश्य (१६) मोडासा गुजरात गुरुब्राह्मण समाजको आशीर्वचन प्रदान करते हुए परम पूज्य आचार्य महाराजश्री ।

RNI No. GUJ BIL /2006/18311 Registration No. GJN-1 / 2009-2011

(१-९) नवनिर्मित श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर त्रिकमपुरा पहाडियामें पूजा प्रतिष्ठाके अवसर पर आयोजित श्री १०८ पारायणके दृश्य (१०-१४) मोविया(गोंडल) में श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिरका शिलान्यास करते हुए तथा आशीर्वचन प्रदान करते हुए परम पूज्य आचार्य महाराजश्री

PRINTED BOOK

TO :

SHRI KRISHNA PRANAMI DHARMA PATRIKA
SHRI 5 NAVTANPURI DHAM JAMNAGAR - 361 001 (INDIA)